Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

समाज के चितेरे कथाकार प्रेमचन्द का उत्स संस्कृत साहित्य में

डॉ0 मधु शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
नानकचन्द ऐंग्लो संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ।

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 109-116

Publication Issue :
May-June-2021

Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

सारांश–संस्कृत के नीतिकारों से लेकर आधुनिक भाषा साहित्य के प्रेमचंद आदि साहित्य–शिल्पियों की सर्जन–धर्मी चेतना प्रायः एक समान समाज–चिन्तन से परिचालित रही है। यही कारण हैं कि काव्य का विराट अन्तराल होते हुए भी उक्त दोनों ही प्रकार के कृतिकार आश्चर्यजनक रूप से सामाजिक सम्बन्धों की एक सी ही उष्मा के उपासक रहे हैं, युग के ध्रुवों पर स्थित होते हुए भी वे समाज–सम्बन्धी एक से ही मूल्यों और आदर्शों का आह्वान करते हैं। कहना ही होगा कि इस यात्रा में भारतीय वाङ्मय में अलंकार योजना बदली, काव्य 'सौन्दर्य' विषयक दृष्टि तथा सृष्टि बदली, शिल्प बदले यहाँ तक कि भाषाएँ भी बदल गईं पर समाज–चित्रण–गत जैसी अक्षुण्ण परम्परा यहाँ विद्यमान हैं वैसी निःसन्देह विश्व के किसी भी क्षेत्र में नहीं।

मुख्य शब्द–समाज, कथाकार, प्रेमचन्द्र, संस्कृत, साहित्य, काव्यसौन्दर्य, मूल्य, आदर्श।

समाज–चित्रण भारतीय साहित्य की पुराकाल से लेकर आज तक प्रत्येक छोटी बड़ी धारा में अपना स्थान बनाये हुए है। निश्चय ही संस्कृत–वाङ्मय के नीति–वचन उसके द्वारा किया गया मनुष्यता का सर्वोत्तम शृंगार है तथा इन नीति–वाक्यों का भी श्रेष्ठ शृंगार प्रकृतोपवर्णित सामाजिक यथार्थ तथा तदुचित संदेश में निहित है। विशेष बात यह है कि समाज–चित्रण की यह धारा ऐसा नहीं है कि संस्कृत के नीति–वाङ्मय में ही वर्णित होकर कीर्तिशेष हो गयी हो प्रत्युत् युगों बाद भी अन्य भाषाओं में भी भारतीय साहित्यकार, समान सामाजिक संवेदना से समाविष्ट और सम्प्रेरित परिलक्षित होता है। इसी तथ्य को संस्कृत के नीति–वाक्यों के समानान्तर आधुनिक भाषा–साहित्य के. प्रतिनिधिभूत प्रेमचंद कृत हिन्दी–कथा–वाङ्मय को क्रमबद्ध रूप में रखकर समझा जा सकता है।

इस क्रम में सर्वप्रथम 'मित्रादि' कतिपय सामाजिक सम्बन्धों की अपेक्षा से संस्कृत की नीतियाँ और प्रेमचंद की कथाएँ साथ–साथ द्रष्टव्य है–

सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य के जीवन में 'मित्र' का अत्यधिक महत्त्व है **"अमित्रस्य कुतो सुखम्"** का यही अभिप्राय है। पारिवारिक सम्बन्धियों के पश्चात् समाज में मित्रों से सर्वाधिक घनिष्ठता होती है। मित्र पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों की मध्यवर्ती कड़ी सदृश होता है। भारतीय विचारधारा में मित्र को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। वेदों में ईश्वर का एक अभिधान 'मित्र' भी है। परमात्मा को मित्र मानने वाले कथन ऋग्वेद,[i] यजुर्वेद,[ii] सामवेद[iii] तथा अथर्ववेद[iv] में समान रूप से प्राप्त होते हैं।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

'बुद्धचरित' में मित्र उसको माना गया है जो कि आर्थिक संकट के समय सहायक हो, क्योंकि सम्पन्नावस्था में तो सभी मित्र बनने का प्रयास करते हैं, जैसा कि कहा भी गया है–

''ये चार्थकृच्छ्रेषु भवन्ति लोके समानकार्याः सुहृदां मनुष्याः।
मित्राणि तानीति परैमि बुद्धया स्वस्थस्य वृद्धिष्विह को हि. न स्यात्।।''[v]

'शुक्रनीति' का निम्न श्लोक मित्रता के विषय में बहुत ही उपयोगी है–

यः साहाय्यं सदा कुर्यात् प्रतीपन्न वदेत् क्वचित्।
सत्यं हितं वक्ति याति दत्ते गृह्णाति मित्रताम्।।''[vi]

उपर्युक्त श्लोक में 'शुक्राचार्य' ने बताया है कि मित्र वह है जो सदैव सहायता करें, कभी प्रतिकूल न बोले, हितकारी सत्य का कथन करें और बराबर लेता देता रहे। मित्र की जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः उत्तम मित्र का चयन करना अत्यावश्यक होता है।

उत्तम कोटि के मित्र से व्यक्ति का निरन्तर उत्थान होता है इसके विपरीत कुमित्र से व्यक्ति पतन के गर्त में गिरता चला जाता है । 'भर्तृहरि' ने 'नीतिशतकम्' में सन्मित्र के लक्षण बताते हुए कहा है कि– अच्छा मित्र पाप से बचाता है, हित के कार्यों में लगाता है, छिपाने योग्य बात को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति में पड़े हुए मित्र का परित्याग नहीं करता समय पर धनादि से सहायता प्रदान करता है। सज्जन लोग इसे अच्छे मित्र का लक्षण बताते हैं, यथा–

''पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्रलक्षणमिदं निगदन्ति सन्तः।।''[vii]

इसी सन्दर्भ में यदि तुलनात्मक रूप में देखा जाये तो 'मुंशी प्रेमचंद' जी लेखकों के उस समाजशास्त्रीय वर्ग से सम्बन्धित हैं, जो कि नैतिक उपदेशों के एक विशेष स्वर को स्वीकार करता है। जहाँ उन्होंने जड़ता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, अकर्मण्यता, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और अभिमान में ग्राम्य–जीवन का चित्रण अन्तर्दृष्टि के साथ किया है वहाँ मैत्री सम्बन्धी आदर्शों को भी व्यक्त किया है।

'डिक्री के रुपये' कहानी में नईम ने अदालत में कैलाश पर हुई 20 हजार रु० की डिक्री क्षमा करके मित्रता का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है।[viii]

'माँगे की घड़ी' कहानी में दानू की मित्र के प्रति अद्भुत सहानुभूति और त्याग सराहनीय है। वह अपने मित्र को एक घड़ी माँगने पर देता है और बदले में उस घड़ी की कीमत वसूल करने के बहाने उसको व्यर्थ के खर्चों से बचना तथा बचत करना सिखाता है। ''जब तुम्हारी आमदनी कुल तीस रुपये है तो सब अपने ऊपर खर्च करने का तुम्हें काई अधिकार नहीं।[पग] प्रेमचंद जी ने प्रस्तुत कहानी में मित्र 'दानू' के माध्यम से मितव्ययी बनने का उपदेश दिया है।'' गुजर तो लोग पाँच रुपये में भी करते हैं और 500 रु० में भी इसकी न चलाओ अपनी सामर्थ्य देख लो।[x]

मित्र का कर्त्तव्य है कि वह हर प्रकार से मित्र की सहायता करके मित्र का उत्थान करे। दानू अपने मित्र को उसकी पत्नी सहित अपने घर में पनाह देता है और विदा होते समय उसको 100 रु० देता है– ''यह तुम्हारी अमानत है। लेते जाओ। मैंने विस्मय से पूछा– मेरी अमानत कैसी? दानू ने कहा– 15 रु० के हिसाब से 6 महीने के 90 रु० 10 रु० सूद।''[xi]

जब वह कहता है कि तुम मुझे चारों तरफ से एहसान से दबाना चाहते हो तो दानू कहता है कि मैंने तुम्हारे उत्थान के लिए यह किया– ''हाँ दबाना चाहता हूँ. फिर? तुम्हें आदमी बना देना चाहता हूँ, नहीं तो

उम्र भर तुम यहाँ होटल की रोटियाँ तोड़ते और तुम्हारी देवी जी वहाँ बैठी तुम्हारे नाम को रोतीं! कैसी शिक्षा दी है इसका एहसान तो न मानोगे।''[xii]

'डिक्री के रुपये' कहानी में नईम अदालत में कैलाश पर हुई 20 हजार रुपये की डिक्री को क्षमा करता है। इतना ही नहीं वह कैलाश की पत्नी उमा के सामने कैलाश को लज्जित भी नहीं होने देता तथा उससे कहता है– ''अजी आप कहती क्या हैं? मैंने रुपये पाई–पाई वसूल कर लिये। उमा ने चकित होकर कहा–सच! उनके पास रुपये कहाँ थे? नईम– उनकी हमेशा की यही आदत है आपसे कह रखा होगा, मेरे पास कौड़ी नहीं है। लेकिन मैंने चुटकियों में वसूल कर लिया। उमा– रुपया भला क्या दिये होंगे मुझे एतबार नहीं आता। नईम– आप सरल हैं वह एक ही काईयाँ। उसे तो मैं ही खूब जानता हूँ अपनी दरिद्रता के दुखड़े गा–गाकर आपको चकमा दिया करता होगा। . . . उमा मैं रुपये पा गया। इन बेचारे का परदा ढका रहने दो।''[xiii]

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संस्कृत के नीति–ग्रन्थों, महाकाव्यों आदि में मित्रता के जिस आदर्श का मुहुर्मुहुः उद्घोष किया गया है वहीं कथासम्राट् मुंशी प्रेमचंद के कथा–साहित्य में अनेक रूपों और आधुनिकीकृत आयामों में स्थान–स्थान पर प्रतिध्वनित होता रहा है।

अतिथि–सत्कार भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा रही है। यहाँ अतिथि को देवता के समान पूजा जाता है–

'अतिथि देवो भव' अर्थात् अतिथि को देवता के समान समझने वाले बनो। 'आपस्तम्ब धर्मसूत्रों में कहा गया है कि जो गृहस्थ के पास केवल भिक्षा धर्म के उद्देश्य से आता है वह अतिथि होता है यथा–

''स्वधर्मयुक्तं कुटुम्बिनमभ्यागच्छति धर्मपुरस्कारो।
नाऽन्यप्रयोजनः सोऽतिथिर्भवति।''[xiv]

मनुस्मृतिकार ने कहा है कि– स्वयं आये अतिथि का आसन, जल और यथाशक्ति अन्न से सत्कार करें–

''संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्।।''[xv]

'हितोपदेश' में कहा गया है कि– अतिथि–रूप में आये हुए शत्रु का भी यथोचित आदर करना चाहिए–

''अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः।।''[xvi]

संस्कृत की शब्दनिधि में निहित उक्तविध नीति–वचनों में व्याप्त आतिथ्य–धर्म तदितर भारतीय वाङ्मय में भी प्रायः समानभावेन अनुस्यूत दिखायी देता है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि कथा–सम्राट प्रेमचंद (जो शेष भारतीय वाङ्मय के प्रतिनिधि के रूप में यहाँ उपात्त हैं) की कहानियों को देखा जाए तो संस्कृत की परम्परा से प्राप्त अतिथि–परिचर्या–सम्बन्धी उक्त उच्चतम मूल्य ही साक्षात् संगुम्फित मिलते हैं, जैसे उनकी 'बाबा जी को भोग' नामक कहानी में रामधन नाम का अहीर निर्धनता की पराकाष्ठा को भोगते हुए भी अभ्यागत साधु के लिए किस प्रकार सामग्री जुटाता है, यह द्रष्टव्य है।[xvii]

इसी प्रकार 'ममता' कहानी में बाबू साहब अतिथि सत्कार के लिए इतने व्यग्र रहा करते थे कि उन्हें अपनी दुकानों की देखभाल करने का भी अवसर न मिलता था। उदाहरणार्थ– ''अतिथि सत्कार एक पवित्र

धर्म है। वे सच्चे देशहितैषिता की उमंग से कहा करते थे– अतिथि सत्कार आदिकाल से भारतवर्ष के निवासियों का एक प्रधान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतों का आदर सम्मान करने में हम अद्वितीय हैं। हम इससे संसार में मनुष्य कहलाने योग्य हैं। हम सब कुछ खो बैठे हैं किन्तु जिस दिन हममे यह गुण शेष न रहेगा, वह दिन हिन्दू जाति के लिए लज्जा, अपमान और मृत्यु का दिन होगा।''[xviii]

निर्धन से निर्धन भारतीय जो मात्र चने–चबैने पर जीवन–निर्वाह करता है, अतिथि सत्कार से वह भी अनभिज्ञ तथा विमुख नहीं रहता। 'सवा सेर गेहूँ' कहानी में शंकर नाम का कुरमी जो कभी–कभी चने भी न मिलने पर पानी पीकर सो जाता था परन्तु अतिथि के आने पर उसका स्वागत सत्कार अपना धर्म समझकर जुट जाता था।[xix]

'डिक्री के रुपये' कहानी में प्रेमचंद जी ने यह दर्शाया है कि भारतीय विषम परिस्थितियों में भी तथा अप्रिय व्यक्ति का भी घर आने पर आतिथ्य करते हैं। ''कैलाश की पत्नी इस चिन्ता में डूबी है कि 'नईम' के डिक्री के रुपये न देने के कारण सरकारी कुर्क मुनीम घर बार नीलाम कर देगा और हम बेघर हो जायेंगे'' किन्तु तभी नईम को देखकर मधुर शब्दों में उसका स्वागत करती है। ''कैलाश के घर में परदा न था। उमा चिन्ता–मग्न बैठी हुई थी सहसा नईम और कैलाश को देखकर चौंक पड़ी। बोली– आइए मिरजा जी! अबकी तो बहुत दिनों में याद किया।[xx]

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में उपलब्ध अतिथि सत्कार के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ नीति और सामाजिकता उनकी कहानियों के प्राण हैं वहाँ अतिथि–धर्म की परिपालन–रूप सभ्यता से भी ओतप्रोत हैं।

सत्संगति, परोपकार तथा दया आदि सामाजिक मूल्यों और भावों के चित्रण में भी संस्कृत के नीति–वचनों का ऐसा ही प्रभाव शेष भारतीय वाङ्मय में प्रतिबिम्बित हुआ है जिसे संस्कृत नीति–वचनों तथा प्रेमचंद की कथाओं के सापेक्ष अनुशीलन से समझा जा सकता है।

संगति का प्रभाव व्यक्ति के उत्थान–पतन पर बहुत पड़ता है। मनुष्य जैसे सम्पर्क में रहता है वैसा ही हो जाता है। संस्कृत कवि 'भर्तृहरि' ने 'नीतिशतकम्' में सत्संगति को व्यक्ति की सर्वांगीण उन्नति का माध्यम बताया है–

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति,
चेतः प्रसादयति, दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।[xxi]

निर्मल गुणों की परिगणना करते समय उन्होंने कहा है, सज्जनों की संगति की इच्छा करनी चाहिए– "वाञ्छा सज्जनसङ्गमः''[xxii] उन्होंने यह भी कहा है कि व्यक्ति को गुणवान् लोगों की संगति में रहकर लाभ होता है– ''को लाभो? गुणिसङ्गमः''[xxiii]

'हितोपदेश' में कहा गया है कि सत्संगति का ऐसा अनोखा प्रभाव होता है जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्णतः परिवर्तित हो जाता है। वज्रमूर्ख भी सत्संगति से सुबुद्धि बन जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे सोने के संसर्ग से काँच की शोभा मरकतमणि जैसी हो जाती है–

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।[xxiv]

निम्न श्रेणी के लोगों के साथ रहने से बुद्धि घट जाती है, समान पुरुषों के साथ रहने से समान रहती है तथा बुद्धिमानों के साथ रहने से बढ़ जाती है, यथा च

हीयते हि मतिस्तात! हीनैः सह समागमात्।

समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।।[xxv]

कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद जी एक प्रगतिशील लेखक थे। वे व्यक्ति के चहुँमुखी विकास के लिए सदैव सजग रहते थे। सत्संगति के द्वारा भी व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। अतः उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से कुसंग से बचने तथा सत्संगति में रहने की प्रेरणा दी है जिससे जनजीवन प्रगति की ओर उन्मुख हो सके।

मुंशी प्रेमचंद सत्पुरुषों के सत्संग को मनुष्य के आचरण का शोधक मानते हैं उनका यह मन्तव्य है कि– दुराचारी व्यक्ति भी सत्संगति से सदाचारी बनकर प्रगति–मार्ग पर चलने लगता है । 'अग्नि समाधि' कहानी में कुसंग के कुप्रभावों का वर्णन करते हुए विषयान्तर से सत्संग की महिमा बतायी है– ''साधु संतों के सत्संग से बुरे भी अच्छे हो जाते हैं, किन्तु प्रयाग का दुर्भाग्य था कि उस पर सत्संग का उल्टा ही असर हुआ। उसे गाँजे, चरस और भंग का चस्का पड़ गया, जिसका फल यह हुआ कि एक मेहनती, उद्यमशील युवक आलस्य का उपासक बन बैठा।''[xxvi] इसका कारण यह है कि साधु सच्चे अर्थों में साधु नहीं था। क्योंकि वह चरस इत्यादि मादक–द्रव्यों का उपभोग करके जनसाधारण को दिग्भ्रमित करता था। **'सर्वभूतहितेरतः साधु'** के अनुसार साधु जगत् कल्याण में तल्लीन रहता है।

'माँगे की घड़ी' कहानी में सत्संग का यह प्रभाव दर्शाया गया है कि सत्संगति के प्रभाव से एक ऐसा व्यक्ति, जो अपना पूरा वेतन अपने ही ऊपर खर्च कर लेता था तथा पत्नी को श्वसुरालय में छोड़ रखा था, मितव्ययिता सिखा गया और एक महीने में 15 रु० बचाकर घड़ी की किश्त जमा कर आया। यह था सत्संगति का प्रभाव– ''मैं दूसरे ही दिन सस्ते होटल में उठ गया। यहाँ 12 रु० में ही प्रबन्ध हो गया। सुबह को दूध और चाय से नाश्ता करता था। अब छटाँक भर चनों पर बसर होने लगी। 12 रुपये तो यों बचे। पान, सिगरेट आदि की मद में 3 रुपये और कम किये और महीने के अन्त में साफ 15 रुपये बचा लिये।''[गगअपप] इतना ही नहीं दानू बाबू अपने मित्र को सुबह के खाली समय में काम करने के लिये प्रेरित करते हैं। सुबह तो अब भी खाली रहते हो? आमदनी कुछ और बढ़ाने की फिक्र क्यों नहीं करते?[xxviii]

'शंखनाद' कहानी में सत्संगति के अभाव और कुसंगति के प्रभाव से बांके गुमान अपनी दुकान पर दोस्तों के साथ चरस पीते रहे और दुकान में कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होना था। दुकान खुली हुई है, दस–पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरस की दम और ख्याल की तानें उड़ रही हैं–

चल झटपट री, जमुना तट री, खड़ो नटखट री। बांके गुमान ने खूब दिल खोलकर निकाले, यहाँ तक की सारी लागत लाभ हो गई। टाट के टुकड़े के सिवा कुछ न बचा।[xxix]

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में मानव–मात्र की कल्याण–भावना निहित है। यहाँ जो कुछ कार्य होते थे वे सदैव 'बहुजनहिताय' और 'बहुजनसुखाय' की दृष्टि से ही होते थे। यही संस्कृति भारतवर्ष की आदर्श संस्कृति रही है। इस संस्कृति की मूल भावना ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के पवित्र उद्देश्य पर आधारित थी। इसलिए भारतीय ऋषियों ने विश्वकल्याण की कामना करते हुए लिखा था–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

कवियों तथा नीतिकारों ने सदैव परोपकार की सराहना की है। 'कालिदास' ने मूक प्रकृति में भी परोपकार की भावना के दर्शन किये हैं– वृक्ष अपने ऊपर आतप सहकर भी दूसरों को छाया प्रदान करते हैं–

शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।[xxx]

व्यास जी ने अष्टादश पुराणों की रचना की, परन्तु उन सबका सार उन्होंने केवल दो शब्दों में कह दिया कि पुण्य के लिए परोपकार और पाप के लिए परपीड़न अर्थात् परहित साधन ही पुण्य है–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।[xxxi]

संस्कृत कवि 'भर्तृहरि' का मन्तव्य है कि मनुष्य के शरीर की शोभा परोपकार से बढ़ती है, प्रसाधनों के प्रयोग से नहीं–

विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन।[xxxii]

परोपकारियों का स्वाभाविक गुण है, स्वतः कष्ट सहकर भी दूसरों को सुखी करना। महाराज 'भर्तृहरि' ने ऐसे ही पुरुषों को मनुष्यत्व की सर्वोत्कृष्ट श्रेणी में रखा था–

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं, स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।[xxxiii]

'मुंशी प्रेमचंद' जी की दार्शनिक विचारधारा, गाँधीवादी विचारधारा है। अपकार करने वाले को जीतने के लिए अपकार से नहीं जीता जा सकता। मल का प्रक्षालन मल से नहीं होता उसे धोने के लिए शुद्ध जल चाहिए। 'शाप' नामक कहानी में उस पतिव्रता रमणी ने अपने पति को शाप देने वाली श्रीधर की पत्नी के साथ कभी अपकार नहीं किया अपितु उसके पति को रानी से प्राप्त राज्य का भार सौंप दिया। मुंशी जी का कहना है कि शाप देने वाली श्रीधर की पत्नी उस उपकार करने वाली रमणी से आँख नहीं मिला सकती थी बल्कि अपने अपकारों के लिए लज्जित हो जाती थी अतः अपकारी के साथ भी उपकार करना चाहिए–

''मुझे देखते ही उस पर घड़ों पानी पड़ जाता है और उसके माथे पर जलबिन्दु दिखायी देने लगते हैं।''[xxxiv]

मुंशी प्रेमचंद जी ने परोपकार को धर्म माना है। वे कहते हैं कि 'परोपकार' के लिए व्यक्ति को कोई भी कार्य करना पड़े उसे धर्म समझकर करना चाहिये। "त्यागी का प्रेम" कहानी में तो यहाँ तक कहा गया है कि परोपकार के लिए माँगी गयी भिक्षा भी दान कहलाती हैं, यथा–

"परोपकार के लिए भिक्षा माँगना दान है। अपने लिए पान का एक बीड़ा भी भिक्षा है।"[xxxv]

लाला गोपीनाथ परोपकार के लिए एक कन्या–पाठशाला खोलते हैं। "दो साल हो गये हैं। लाला गोपीनाथ ने एक कन्या–पाठशाला खोली है और उसके प्रबन्धक हैं।"[xxxvi]

मुंशी प्रेमचंद जी ने परोपकार को भारतीय संस्कृति का प्रमुख गुण बताया है। 'शाप' कहानी में श्रीधर पंडित को बचाने वाली स्त्री ने परमार्थ को मनुष्य कर्त्तव्य बताया है। पंडित को गंगा में गिरता हुआ देखकर

भी किसी का उसे बचाने का साहस न हुआ तो वह सोचती है कि परमार्थ तो भारतीयों का प्रथम धर्म है। फिर यह निर्बलता असह्य है।

"भारतवर्ष के अतिरिक्त ऐसा संवेदनाशून्य और कौन देश होगा और वह यह देश है जहाँ परमार्थ मनुष्य का कर्त्तव्य बताया गया है लोग बैठे हुए अपंगों की भाँति तमाशा देख रहे थे।"[xxxvii]

'हिंसा परमो धर्मः' कहानी में जामिद मुसलमान होते हुए भी एक स्त्री को काजी के हाथों से छुड़ाकर उसके घर पहुँचाता है तब वह और उसकी नेकदिली तथा परोपकार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।" इससे बड़ी और क्या मेहरबानी होगी। मैं आपकी इस नेकी को कभी नहीं भूलूँगी।"[xxxviii]

इस प्रकार मुंशी प्रेमचंद आदि परवर्ती साहित्यकारों ने भी संस्कृत लेखकों की भाँति परोपकार को मनुष्य का प्रथम धर्म सिद्ध किया है।

सन्दर्भ–

[i] ऋग्वेद–8/18/11

[ii] यजुर्वेद– 32/10

[iii] सामवेद–184

[iv] अथर्ववेद–11/1/3

[v] अश्वघोष बुद्धचरित– 11/4

[vi] शुक्रनीति– 3/257

[vii] प्रेमचन्द–मानसरोवर भाग–3, 'डिक्री के रुपये'

[viii] प्रेमचन्द–मानसरोवर भाग–4, 'माँगे की घड़ी'

[ix] वही

[x] वही

[xi] वही

[xii] वही

[xiii] प्रेमचन्द–मानसरोवर भाग–3, 'डिक्री के रुपये'

[xiv] आपस्तम्बधर्मसूत्र–3–65

[xv] मनुस्मृति– 3/99

[xvi] हितोपदेश, मित्रलाभ–63

[xvii] प्रेमचन्द–मानसरोवर भाग, बाबा जी का भोग

[xviii] वही, भाग–5, ममता

[xix] वही, भाग–4, सवा सेर गेहूँ

[xx] वही, भाग–3, डिक्री के रुपये

[xxi] भर्तृहरि– नीतिशतकम्–श्लोक–23

[xxii] भर्तृहरि– नीतिशतकम्–श्लोक–62

[xxiii] भर्तृहरि– नीतिशतकम्–श्लोक–104

[xxiv] हितोपदेश– श्लोक–41, प्रस्ताविका– 33–42

[xxv] हितोपदेश–श्लोक–42

[xxvi] प्रेमचन्द–मानसरोवर भाग–5, अग्नि–समाधि

[xxvii] वही, भाग–4, माँगे की घड़ी

[xxviii] वही, भाग–4, माँगे की घड़ी

[xxix] वही, भाग–7, शंखनाद

[xxx] कालिदास ग्रंथावली–पं० सीताराम चतुर्वेदी–सूक्तियाँ–पृ० 41

[xxxi] वेदव्यास

[xxxii] भर्तृहरि– नीतिशतकम्, श्लोक 63

[xxxiii] वही–श्लोक, 65

[xxxiv] प्रेमचन्द–मानसरोवर–भाग–6, शाप

[xxxv] वही, भाग–6, त्यागी का प्रेम

[xxxvi] वही

[xxxvii] वही, शाप

[xxxviii] वही, भाग–5, हिंसा परमो धर्मः।